तेरापंथी जैन व्याकरण साहित्य

□ साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभा

(युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या)

भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है। भाषा का नियामक तत्त्व है व्याकरण। प्रारम्भ में कोई भी भाषा व्याकरण के नियमों में आबद्ध नहीं होती। व्याकरण की नियामकता के अभाव में लोक-व्यवहार में प्रचलित शब्दों की तरह भाषा के नए प्रयोग भी मान्य हो जाते हैं। किन्तु यह तब तक होता है जब तक उस भाषा का प्रवेश साहित्य के क्षेत्र में नहीं होता। साहित्य-क्षेत्र में उतरते ही भाषा के लिए नियमन की अनिवार्यता हो जाती है। कुछ लोगों का अभिमत है कि पहले व्याकरण बनता है और उसके अनुसार भाषा के प्रयोग होते हैं, किन्तु व्याकरण के नियमों का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उस समय में प्रचलित कुछ विशेष शब्दों की सिद्धि के लिए विशेष सूत्रों का निर्माण किया गया।

संस्कृत और प्राकृत भाषा के व्याकरण काफी समृद्ध हैं। जैन एवं जैनेतर विद्वानों ने व्याकरण साहित्य की अभिवृद्धि में पूरा योग दिया है। जैन आगमों के अनुसार 'सत्यप्रवादपूर्व' व्याकरण का उत्स है। उसमें व्याकरण के मौलिक विधानों का संग्रह है। जैन आगमों की भाषा प्राकृत है अतः पूर्वगत व्याकरण के विधान प्राकृत भाषा से सम्बन्धित हो सकते हैं। वह पूर्व वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, इसलिए उसके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। आगमों के मूल विभाग में 'अनुयोगद्वार' सूत्र है। उसमें लिंग, वचन, काल, पुरुष, कारक, समास, तद्धित आदि का सोदाहरण उल्लेख है। ये उदाहरण प्राकृत भाषा में हैं, किन्तु सम्भव है तब तक संस्कृत भाषा के व्याकरण बन गये हों, क्योंकि इसमें तीन वचनों का उल्लेख है जबकि प्राकृत में द्विवचन नहीं होता है।

भारतीय इतिहास के अनुसार कुषाणकाल संस्कृत साहित्य का उत्कर्षकाल है। इस समय ब्राह्मणों और श्रमणों ने संस्कृत भाषा में लिखना प्रारम्भ कर दिया था। श्रमण-परम्परा में जैन और बौद्ध दोनों का समावेश है। जैन और बौद्ध आचार्यों ने अन्य साहित्य के साथ संस्कृत में व्याकरण भी लिखे। बौद्धाचार्य चन्द्रगोभी का चान्द्र व्याकरण प्रसिद्ध आठ व्याकरणों में से एक है। जैन व्याकरणों की सूची बहुत लम्बी है किन्तु सर्वांगीण व्याकरणों की संख्या अधिक नहीं है। अधिकांश वैयाकरणों ने पूर्व लिखित व्याकरणों की पूरकता अथवा उसकी व्याख्या में ही अपने ग्रन्थ लिखे हैं। स्वतन्त्र और सर्वांगीण रूप से लिखे गए व्याकरणों में भावसेन त्रैवैद्य का तन्त्र, देवनन्दी का जैनेन्द्र व्याकरण, पल्यकीर्ति का शाकटायन और हेमचन्द्राचार्य का हेमशब्दानुशसान उल्लेखनीय हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती व्याकरणों का सांगोपांग अध्ययन करने के बाद अपना व्याकरण लिखा इसलिए यह अन्य व्याकरणों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। जैन आचार्यों द्वारा लिखित पचासों व्याकरण ग्रन्थों के नाम उपलब्ध हैं, किन्तु इस निबन्ध में तेरापंथ संघ के व्याकरण ही विवेच्य हैं।

बीसवीं सदी के व्याकरण ग्रन्थों में 'भिक्षुशब्दानुशासनम्' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इस समय में जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यों द्वारा निर्मित और कोई व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। 'भिक्षुशब्दानुशासनम्' तेरापंथ संघ का अपना व्याकरण है। वि०सं० १९८८ में इसका निर्माण कार्य पूरा हुआ था। इसके निर्माण का एक स्वतन्त्र इतिहास है, जिसका उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा।

तेरापंथ संघ के साधु-साध्वियों का प्रारम्भिक विहार क्षेत्र राजस्थान रहा है। राजस्थान की लोकभाषा राजस्थानी है अतः अध्ययन, अध्यापन और साहित्य-रचना का क्रम राजस्थानी में चला। तृतीय आचार्य श्री रायचन्द्र जी के समय भावी आचार्य श्री जीतमलजी (जयाचार्य) ने संस्कृत विद्या में पदन्यास किया। पंचम आचार्य श्री मघवागणी को संस्कृत भाषा विरासत में प्राप्त हुई। उन्होंने सारस्वत, चन्द्रिका, चान्द्र, जैनेन्द्र आदि व्याकरण ग्रन्थों का विशद अध्ययन किया। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी को दीक्षित करने के बाद उनको भी संस्कृत भाषा के अध्ययन में नियोजित किया गया, किन्तु क्रमबद्धता न रहने से उसमें पर्याप्त विकास नहीं हो सका।

आचार्य बनने के बाद कालूगणी ने संस्कृत भाषा को पल्लवित करने का भरसक प्रयास किया। अध्यापन-काल में उन्होंने अनुभव किया कि सारस्वत, चन्द्रिका आदि अपूर्ण व्याकरण हैं। सारकौमुदी के आधार पर उस अपूर्णता को भरने का प्रयास किया गया, पर पूरी सफलता नहीं मिली। इसके बाद उन्हें विशालकीर्तिगणी द्वारा रचित 'विशालशब्दानुशासनम्' प्राप्त हुआ। इस व्याकरण का व्यवस्थित अध्ययन प्रारम्भ हुआ, किन्तु बीच-बीच में कुछ स्थल समझने में कठिनाई महसूस होने लगी। सरदारशहर में आशुकविरत्न पण्डित रघुनन्दनजी का योग मिला। उनके पास कुछ साधुओं ने हेमशब्दानुशासन का अध्ययन प्रारम्भ किया और कुछ साधुओं ने विशालशब्दानुशासन का। हेमशब्दानुशासन का क्रम ठीक था, अतः उसका अध्ययन व्यवस्थित रूप से चलता रहा।

विशालशब्दानुशासन अष्टाध्यायी के रूप में था। वृत्ति के अभाव में सूत्रगत रहस्य समझ में नहीं आ सके। सारकौमुदी प्रक्रिया का आधार पुष्ट नहीं था। अतः एक बार कालूगणी ने कहा—विशालशब्दानुशासन की बृहद्वृत्ति बन जाए तो कितना अच्छा हो। आचार्यश्री के निर्देशानुसार पण्डित रघुनन्दनजी ने काम पूरा करने का संकल्प किया। वि०सं० १९८१ में काम प्रारम्भ हुआ। पाणिनीय अष्टाध्यायी, सिद्धान्तकौमुदी, सारकौमुदी, सारस्वत, सिद्धान्त-चन्द्रिका, हेमशब्दानुशासन आदि अनेक ग्रन्थों की वृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करके एक नई वृत्ति तैयार करने का निर्णय किया गया। इस काम में पण्डितजी के अनन्य सहयोगी थे मुनिश्री चौथमलजी (दिवंगत)। वे प्रतिदिन आठ घंटा का समय इनमें लगाते थे।

श्री भिक्षुशब्दानुशासनम्

व्याकरण में किसी प्रकार की न्यूनता न रहे, इस दृष्टि से सवृत्तिक सूत्र तैयार किए गए। कुछ साधुओं को उनका अध्ययन विशेषरूप से कराया गया। अध्ययनकाल में नई जिज्ञासाएँ पैदा हुईं और फिर संशोधन किया गया। एक बार इसे सम्पूर्ण रूप से तैयार करके मुनिश्री चौथमलजी ने स्वयं इसका अध्ययन कराया। विद्यार्थी साधुओं की शंकाओं से इसमें पुनः परिवर्तन की अपेक्षा महसूस हुई। इन सब परिवर्तनों और संशोधनों का परिणाम यह हुआ कि 'विशालशब्दानुशासन' का मूल रूप प्रायः बदल गया। रूप-परिवर्तन के साथ नाम परिवर्तन भी आवश्यक समझा गया, अतः तेरापंथ संघ के आद्यप्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु के नाम पर उस नवनिर्मित ग्रन्थ का नाम 'भिक्षुशब्दानुशासन' रखा गया।

भिक्षुशब्दानुशासन पर पूर्व व्याकरणों का प्रभाव है, पर इसे उनके विवादास्पद स्थलों से बचाने का प्रयास किया है। ग्रन्थकार का उद्देश्य अपने ग्रन्थ को अपेक्षाकृत सरल बनाने का रहा है। सरलता के साथ इसकी शैली में संक्षेप भी है। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने अपनी सम्मतियाँ भेजी हैं। उनके अनुसार लघुसिद्धान्त कौमुदी के हल् सन्धि प्रकरण में ४१ सूत्रों और कई वार्त्तिकों से जो काम होता है वह इस व्याकरण में २३ सूत्रों से ही हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाणिनीय व्याकरण के आधार पर 'उत्थानम्' इस शब्द की सिद्धि में छः सूत्र लगाने पड़ते हैं, किन्तु भिक्षुशब्दानुशासन का एक ही सूत्र उन सबका काम कर देता है।

भिक्षुशब्दानुशासन प्रकाशित नहीं है, इसलिए इसका अध्ययन अध्यापन तेरापंथ संघ के साधु-साध्वियों तक ही सीमित है। इस व्याकरण ग्रन्थ के अध्ययन से साधु-साध्वियों ने संस्कृत विद्या के क्षेत्र में अच्छा विकास किया है।

तेरापंथ संघ के नामकरण की पहले कोई कल्पना नहीं थी, इसी प्रकार इस संघ के व्याकरण का नामकरण भी अकल्पित रूप से हुआ। भिक्षुशब्दानुशासन अष्टाध्यायी के क्रम से बनाया गया है। इसकी सूत्र संख्या जानने के लिए देखिए यन्त्र---

चरण	१	२	३	४	
अध्याय १	६७	४५	६५	८९	२६६
२	१२३	१०५	११६	१२८	४७२
३	२०१	१६०	१०३	१२०	५८४
४	१४२	१३४	१२२	११४	५१२
५	८५	१०५	९०	१२४	४०४
६	८५	१५३	१४६	९४	४७८
७	१३२	१९१	१०८	१०४	५३५
८	१४३	१०१	११७	१३४	४९५
				कुल संख्या	३७४६

कालूकौमुदी

भिक्षु शब्दानुशासन का निर्माण होने के बाद संघ के साधु-साध्वियों में संस्कृत भाषा के प्रति विशेष अभिरुचि पैदा हुई। प्रतिभा-सम्पन्न और स्थिर विद्यार्थियों के लिए भिक्षुशब्दानुशासन का अध्ययन सहज हो गया किन्तु साधारण बुद्धिवालों और प्रारम्भिक रूप से पढ़ने वालों के लिए कुछ जटिलता पैदा हो गई। उस जटिलता को निरस्त करने के लिए भिक्षुशब्दानुशासन की संक्षिप्त प्रक्रिया "कौलूकौमुदी" नाम से तैयार की गई। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। यह काम भी मुनि श्री चौथमलजी ने किया। संक्षिप्तता और सरलता के साथ कालूकौमुदी की उपयोगिता बढ़ गई। "कौलूकौमुदी" पढ़ने के बाद भिक्षुशब्दानुशासन का अध्ययन भी सुगम हो गया। "कालूकौमुदी" के दोनों भाग प्रकाशित हैं।

एक बार बनारस विश्वविद्यालय में संस्कृत के विद्यार्थियों ने कालूकौमुदी की पुस्तक देखी। उसे देखकर वे लोग बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा—'हम संस्कृत व्याकरण पढ़ते हैं पर पढ़ने में मन नहीं लगता। क्योंकि हमें प्रारम्भ से ही बड़े-बड़े व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता है। कालूकौमुदी जैसी छोटी-छोटी पुस्तकें पढ़ाई जाएँ तो सहज ही हमारा उत्साह बढ़ जाता है।'

श्री भिक्षुशब्दानुशासन लघुवृत्ति

भिक्षुशब्दानुशासन को साधारण जन-भोग्य बनाने के लिए मुनि श्री धनराजी और मुनि श्री चन्दनमलजी के संयुक्त प्रयास से इसकी लघुवृत्ति तैयार की गई। लघुवृत्ति का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए वृत्तिकारों की ओर से लिखा गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बृहद्वृत्ति समालोक्य भैक्षुशब्दानुशासनीम् ।
शीघ्रोपकारिणी श्रेष्ठा लघ्वीवृत्तिर्विरच्यते ॥

इसमें भिक्षुशब्दानुशासन के उलझन भरे सूत्रगत रहस्यों को छोड़कर सामान्य रहस्यों को खोला गया है, इसलिए साधारण विद्यार्थी इसके माध्यम से भिक्षुशब्दानुशासन का अध्ययन करने में सफल हो सकते हैं। इसका रचना-काल वि०सं० १९९५ है।

तुलसीप्रभाप्रक्रिया

वि०सं० १९९९ में मुनि श्री सोहनलालजी (चूरू) ने 'तुलसीप्रभाप्रक्रिया' नामक व्याकरण तैयार किया। इस व्याकरण का आधार सिद्धहेमशब्दानुशासन है। व्याकरण और न्याय के जितने ग्रन्थ हैं वे सब पूर्वरचित ग्रन्थों के आधार पर ही बनाए गए हैं इसलिए इनमें कई स्थलों पर एकरूपता प्राप्त होती है। एकरूपता होने पर भी ग्रन्थ में जो नयापन होता है, वह ग्रन्थकार का अपना होता है। इस दृष्टि से प्रत्येक ग्रन्थ का स्वतन्त्र महत्त्व है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'तुलसीप्रभाप्रक्रिया' में प्राचीन उदाहरणों को नए रूप में परिवर्तित किया गया है। संज्ञाएँ प्राचीन ही हैं, फिर भी उदाहरणों की नवीनता ने इस ग्रन्थ को पठनीय बना दिया है।

श्रीभिक्षुन्यायदर्पण

व्याकरण के सूत्र अपने आप में पूर्ण होने पर भी अपूर्ण रहते हैं। अनेक सूत्रों के हितों में परस्पर संघर्ष खड़ा हो जाता है। ऐसी स्थिति में पाठक के सामने समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। पाठकों की समस्या समाहित करने के लिए व्याकरण के साथ कुछ न्याय सूत्रों का होना आवश्यक है। जहाँ-जहाँ सूत्रों में संघर्ष पैदा होता है न्याय के आधार पर उसे उपशान्त किया जाता है। भिक्षुशब्दानुशासन की उलझनों को समाधान देने के लिए 'श्रीभिक्षुन्याय-दर्पण' का निर्माण हुआ। न्याय की परिभाषा देते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है—

नीयते संदिग्धोऽर्थो निर्णयमेभिरिति न्यायाः

सन्दिग्ध अर्थ को निर्णय देने वाले सूत्रों का नाम न्याय है। न्यायदर्पण में १३५ सूत्र हैं। इन सूत्रों का सम्बन्ध मूलतः व्याकरण से है फिर भी ये बहुत व्यावहारिक हैं। व्यावहारिकता के कारण इनका विषय वर्णन रोचकता लिए हुए है।

भिक्षुलिंगानुशासन

"लिंगानुशासनमन्तरेण शब्दानुशासनं अविकलम्"—लिंगानुशासन के बिना शब्दानुशासन अधूरा रहता है। क्योंकि शब्दानुशासन का काम है शब्दों की सिद्धि। प्रकृति-प्रत्यय से निष्पन्न शब्दों की जानकारी होने पर भी लिंग ज्ञान के अभाव में उनका प्रयोग नहीं हो सकता। लिंगज्ञान के लिए विद्यार्थियों को लिंगानुशासन की अपेक्षा रहती है। पण्डित रघुनन्दनजी ने आचार्य भिक्षु के नाम पर श्रीभिक्षुलिंगानुशासन की रचना की। मुनिश्री चन्दनमलजी ने लिंगानुशासन की वृत्ति बनाकर इसे सुबोध बना दिया। लिंगानुशासन पद्यबद्ध रचना है। इसके श्लोकों की संख्या १५७ है।

श्रीभिक्षूणादि वृत्ति

उणादि पाठ व्याकरण का एक विशेष स्थल है। उसका प्रारम्भ 'उणु' प्रत्यय से होता है, इसलिए इसे उणादि कहते हैं। उणादि प्रत्ययों के द्वारा शब्दों की सिद्धि में बहुत सुगमता रहती है। जो शब्द बनाना है, उसके अनुरूप धातु और प्रत्यय में सम्बन्ध स्थापित कर नए-नए सूत्र बनाए हैं। एक-एक शब्द के लिए सूत्र रचना की गई है। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़ने में सुबोध होने के साथ-साथ रोचक भी है। भिक्षुशब्दानुशासन का निर्माण हुआ तब उसमें उणादि पाठ नहीं रखा गया, इसलिए स्वतन्त्र रूप से सूत्र और वृत्ति की रचना की गई। इस रचना का आधार हेमशब्दानुशासन है।

ग्रन्थकार ने इसकी सूचना देते हुए लिखा है—

श्रीमती हेमचन्द्रस्य सिद्धशब्दानुशासनात्।
औणादिकानि सूत्राणि गृहीतानि यथाक्रमम् ॥१॥
संज्ञाधात्वनुबन्धेषु प्रत्याहारादि रीतिषु।
यत्र भेदस्थितस्तत्र स्वक्रमः परिवर्तितः ॥२॥

तुलसी मंजरी

साधु-साध्वियों के लिए संस्कृत की भाँति प्राकृत का अध्ययन भी आवश्यक है, क्योंकि आगम-साहित्य प्राकृत भाषा में निबद्ध है। किसी भी साहित्य को मूल भाषा में पढ़ने से जो आनन्द मिलता है तथा अर्थ-बोध होता है वह उसके अनुवाद में नहीं हो सकता। संस्कृत-व्याकरण पढ़ लेने के बाद प्राकृत व्याकरण की क्लिष्टता स्वयं समाप्त हो जाती है। उसमें भाषा-सम्बन्धी परिवर्तन को छोड़कर अधिकांश नियम संस्कृत व्याकरण के ही हैं। कुछ नियम अवश्य भिन्न हैं जिन्हें समझने के लिए प्राकृत-व्याकरण का अध्ययन जरूरी है।

हेमशब्दानुशासन का आठवाँ अध्याय प्राकृत व्याकरण से सम्बन्धित है। हेमशब्दानुशासन पढ़ने वालों के लिए प्राकृत व्याकरण साथ ही पढ़ा जाता है किन्तु 'भिक्षुशब्दानुशासनन्' में यह क्रम नहीं है इसलिए पृथक् व्याकरण बनाने की अपेक्षा महसूस हुई।

मुनिश्री नथमलजी (युवाचार्य महाप्रज्ञ) ने तेरापंथ संघ के वर्तमान आचार्य के नाम पर 'तुलसी मंजरी' नामक प्राकृत व्याकरण बनाया। इस व्याकरण के दो रूप हैं। इसका पहला रूप प्रक्रिया के क्रम से है तथा दूसरा अष्टाध्यायी के क्रम से। विद्यार्थी साधु-साध्वियाँ अपनी सुविधा के अनुसार दोनों क्रमों से अध्ययन करते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद साथ में रहने से विद्यार्थियों को पढ़ने में काफी सुविधा रहती है।

तुलसी-मंजरी में प्राकृत भाषा के साथ शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषा के विशेष नियम भी हैं। जिन नियमों में एकरूपता है उनके लिए 'शेषं प्राकृतवत्' 'शेषं शौरसेनीवत्' कहकर विद्यार्थियों को सूचित कर दिया गया है। उदाहरणों में भी सरलता रखने का प्रयास किया गया। यह कृति छोटी होने पर भी प्राकृत भाषा का सर्वांगीण अध्ययन कराने में सक्षम है।

भिक्षुशब्दानुशासन और अन्य व्याकरण

भिक्षुशब्दानुशासन के निर्माण में पूर्ववर्ती व्याकरणों को आधार माना गया है, किन्तु इसमें मात्र उनका अनुकरण ही नहीं हुआ है। पूर्ववर्ती व्याकरणों के कई स्थल इसमें छूट गए हैं और कुछ नए तथ्य जोड़े गए हैं। रचनाक्रम में भी अन्तर है। हेमशब्दानुशासन में लिंग ज्ञान के लिए व्याकरण के बीच में लिंगानुशासन रखा गया है। भिक्षुशब्दानुशासन में उसे नहीं रखा गया, अतः वह स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में है। हेमव्याकरण में एक अध्याय के चारों पाद परस्पर सापेक्ष हैं। पहले पाद में जो काम होता है उसका अवशिष्ट भाग दूसरे में है, किन्तु भिक्षुशब्दानुशासन में हर चरण अपने आप में पूर्ण है। हेमशब्दानुशासन में स्वर आदि संज्ञाओं को उल्लिखित करके स्वरों का परिचय कराया गया है। भिक्षुशब्दानुशासन प्रत्याहार सूत्र में स्वरों और व्यंजनों को उल्लिखित करने के बाद संज्ञाओं का निर्धारण करता है। हेमव्याकरण में घोष-अघोष आदि को विस्तार से समझाया गया है पर भिक्षुशब्दानुशासन में इसकी अपेक्षा नहीं समझी गई। कुछ स्थलों पर एक ही अर्थ के लिए भिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे—करण, साधन, हेतु, निमित्त, अधिकरण, आधार आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरण साहित्य में पाणिनीय व्याकरण सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यद्यपि वह अपने आप में परिपूर्ण है फिर भी कहीं-कहीं कात्यायन के वार्त्तिक और पतंजलि के भाष्य का सहारा लिया जाता है। इसलिए इस व्याकरण की पूर्णता तीन व्याकरण ग्रन्थों के संयोग से है। सिद्धान्तकौमुदी के निर्माता भट्टोजी दीक्षित ने अपनी रचना के प्रारम्भ में मुनित्रय—पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि को नमस्कार किया है। पाणिनि का व्याकरण अपने आप में परिपूर्ण होता तो आचार्य हेमचन्द्र के लिए किसी कवि को यह नहीं कहना पड़ता—

किं स्तुमः शब्द पाथोधेर्हेमचन्द्र यतेर्मतिम्।
एकेनापि हि येनेदृक् कृतं शब्दानुशासनम्॥

भिक्षुशब्दानुशासन में भी उपर्युक्त तीनों ग्रन्थों का सार संगृहीत है। इसकी पूर्णता या अपूर्णता के बारे में निर्णय देना विद्वानों का काम है पर इसके अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इसके कई उदाहरण बहुत प्राचीन हैं तथा कुछ उदाहरणों में वैदिक शब्दावलि का प्रयोग हुआ है। इन्हें याद रखने के लिए विद्यार्थियों के सामने कुछ कठिनाई पैदा होती ह।

पाणिनीय व्याकरण और भिक्षुशब्दानुशासन के कतिपय स्थलों में जो भेद हैं, उसे यहाँ उल्लिखित किया जा रहा है—

भिक्षुशब्दानुशासन	पाणिनीय व्याकरण
१. लृकार के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीनों प्रकार हैं।	दीर्घ लृकार नहीं है।
२. प्र०वसन, कम्बल, दश, ऋण, वत्सर और वत्सतर शब्दों से परे ऋण हो तो उसे आर आदेश होता है।	वत्सर शब्द नहीं है, इसलिए वत्सरार्णम् रूप नहीं बनता है।
३. ह्रस्व और दीर्घ की भाँति प्लुत शब्दों से भी विशेष कार्य होता है।	प्लुत से कोई विधि नहीं है।
४. समासान्त अध्यर्ध और अर्ध शब्द पूर्व में हो ऐसे पूरणार्थक प्रत्ययान्त शब्द क प्रत्यय होने पर संख्यावत् हो जाते हैं।	यह नियम नहीं है।
५. डयत् प्रत्ययान्त शब्दों से परे जसु को इश् विकल्प से होता है, अतः त्रये, त्रया ये दो रूप बनते हैं।	ड्यत् का ग्रहण नहीं किया है इस लिए केवल 'त्रया' बनता है।
६. नुम् प्रत्यय के विषय के अप् शब्द शब्द की उपधा विकल्प से दीर्घ होती है—स्वाम्पि, स्वम्पि।	इस सम्बन्ध में कोई विधान नहीं है।
७. नपुंसक लिंग में जरस् शब्द से परे सि और अम् का लोप विकल्प से होता है। अतः जरः, जरसम्।	विकल्प का विधान नहीं है।
८. आसन शब्द को आसन् होता है।	आस्य शब्द को आसन् आदेश होता है।
९. शकारान्त शब्द और राज् भ्राज्-व्रश्च भ्रज आदि के अन्त को ष होता है छ को श करने वाला सूत्र दूसरा है।	इनके साथ छकार को भी षकार होता है।
१०. उपाध्याय की स्त्री के लिए उपाध्याया और उपाध्यायी ये दो प्रयोग है। अध्यापिका के लिए केवल उपाध्याय शब्द है।	जो स्वयं अध्यापिका है वह उपाध्याया अथवा उपाध्यायी कहलाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. पूर्वपद में लक्ष्मण शब्द हो तो ऊरु शब्द से ऊङ् समासान्त प्रत्यय होता है—लक्ष्मणोरु।	लक्ष्मण के स्थान पर लक्षण शब्द है—लक्षणोरु।
१२. अकर्मक धातुओं के योग में काल, अध्वा, भाव और देश के आधार की कर्म संज्ञा विकल्प से होती है—मास आस्ते, मासे आस्ते।	कर्म संज्ञा नित्य होती है, अतः केवल मासमास्ते बनता है।
१३. येन तेन शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।	इस शब्द से कोई विधान नहीं है।
१४. अविवक्षित कर्मवाली धातुओं के अजिन् अवस्था के कर्ता की विकल्प से कर्म संज्ञा होती है। पाचयति मैत्रः चैत्रं चैत्रेण वा।	यह विधान नहीं है अतः कर्म की अविवक्षा में पाचयति चैत्रेण यह रूप निष्पन्न होता है।
१५. द्वि द्रोण आदि शब्दों से वीप्सा अर्थ में तृतीया और द्वितीया दोनों विभक्तियाँ होती हैं—द्वि द्रोणेन, द्वि द्रोणं—द्विद्रोणं वा धान्यं क्रीणाति।	तृतीया विभक्ति का विधान नहीं है।
१६. भाव में विहित क्त प्रत्यय के योग में वैकल्पिक षष्ठी—छात्रस्य छात्रेण वा हसितम्	षष्ठी विभक्ति नित्य होती है।
१७. पारे, मध्ये, अग्रे और अन्तः इन शब्दों का षष्ठ्यन्त के साथ समास होता है।	अग्रे और अन्त शब्दों से नहीं होता है।
१८. द्वि, त्रि, चतुष् और अग्र आदि शब्द अभिन्न अंशीवाचक शब्दों के साथ समस्त होते हैं।	अग्र आदि शब्द समस्त नहीं होते।
१९. तृतीयान्त अर्ध शब्द चतसृ शब्द के साथ विकल्प से समस्त होता है।	यह विधान नहीं है।
२०. परः शता, परः सहस्राः, परो लक्षा, सर्वपश्चात्, समरसिंहः पुनः प्रवृद्धम्, कृतापकृतम् भुक्ता भुक्तम् आदि शब्दों में समास का विधान है।	इनके सम्बन्ध में कोई विधान नहीं है।
२१. बहुव्रीहि समास में संख्यावाची अध्यर्ध शब्द पूरणार्थक प्रत्ययान्त अर्ध शब्द विकल्प से समस्त होते हैं—अध्यर्ध विंशा, अर्धपंचम विंशाः।	समास का विधान नहीं है।
२२. मास, ऋतु, भ्रातृ और नक्षत्रवाची शब्दों में क्रमशः प्राग् निपात होता है।	मास शब्द नहीं है
२३. समास मात्र में संख्यावाची शब्दों में क्रमशः प्राग् निपात होता है।	यह नियम नहीं है।
२४. ओजस्, अजस्, अम्भसे, तपस् और तमस् से परे तृतीया विभक्ति का लुक् नहीं होता।	तपस् शब्द नहीं है।
२५. अप् शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं होता य योनि मति और चर शब्द परे हो तो।	मति और चर शब्द नहीं है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. वर्ष, क्षर, शर, वर, अप्, सरस, उरस् और मनस् से परे सप्तमी का लुक् विकल्प से होता है 'ज' परे हो तो।	अप्, सरस्, उरस् और मनस् शब्द नहीं है।
२७. प्रावृष्, वर्षा, शरत् काल और दिव् इनसे परे सप्तमी का लुक् नहीं होता है, उत्तरपद में 'ज' परे हो।	वर्षा शब्द नहीं है।
२८. श्वन् शब्द से परे षष्ठी विभक्ति का लुक् नहीं होता शेष आदि शब्द परे हो तो, संज्ञा के नियम में।	संज्ञा का कोई नियम नहीं है।
२९. नासिका शब्द से परे तसु, य प्रत्यय तथा क्षुद्र शब्द हो तो नस् आदेश होता है—नस्तः, नस्यम्, नःक्षुद्रः।	इस सम्बन्ध में सूत्र नहीं है।
३०. क्रिया—व्यतिहार में गत्यर्थक, शब्दार्थक, हिंसार्थक और हस धातु को छोड़कर अन्य धातुओं से तथा हृ और वह् धातु से आत्मनेपद होता है।	वह् धातु को भी छोड़ा गया है।
३१. चल्यार्थक, आहारार्थक और बुध आदि धातुओं से परस्मैपद होता है कर्तृवाच्य में।	आहारक अद धातु को छोड़ा गया है।
३२. गृणाति, शुभ और रुच धातु से भृश और आभीक्ष्ण्य अर्थ में यङ् प्रत्यय नहीं होता।	गृणाति धातु में निषेध नहीं है।
३३. जिज्ञासार्थक शक धातु में कर्ता में आत्मनेपद होता है—शिक्षते।	ऐसा विधान नहीं है।
३४. अच् प्रत्यय परे हो तो उकारान्त से विहित यङ् का लोप नहीं होता—योयूयः रोरूयः।	यह नियम नहीं है।
३५. वाष्प, उष्म, धूम और फेन कर्म से उद्वमन अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है।	धूम शब्द से नहीं होता।
३६. द्वित्व विधि के प्रसंग के कुछ आचार्य द्वित्व को भी द्वित्व करने के पक्ष में हैं—सुसोसुपिषते।	यह प्रसंग नहीं है, अतः सोसुपिषते।
३७. जृ, भ्रम, वम, त्रस, फण, स्यम, स्वन, राज, भ्राज भ्रास, भ्लास इनमें णवादि सेट् थप परे हो तो अ को ए होता है तथा द्वित्व नहीं होता।	वमति धातु से यह एक विधान नहीं है।
३८. कृपण आदि शब्दों को छोड़कर कृप धातु की ऋ और लृ आदेश होता है।	कृपण आदि शब्दों को नहीं छोड़ा है।
३९. अनिट् प्रत्यय परे हो तो ष्ठिवु और षिवु धातु को विकल्प से दीर्घ होता है।	यह विधान नहीं है।
४०. पित् वर्जित स्वरादि शित्प्रत्यय परे हो तो इंक् धातु को य आदेश विकल्प से होता है।	इंक धातु को इणवत् माना गया है अतः वैकल्पिक विधान नहीं है।
४१. वि पूर्वक श्रम धातु को ति णित् कृत् प्रत्यय और णि प्रत्यय परे हो तो विकल्प से वृद्धि होती है—विश्रामः विश्रमः।	वृद्धि का निषेध होने से केवल विश्रमः रूप बनता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. नश् धातु को विकल्प से नेश् आदेश होता है—अनेशत्, अनशत् ।	नेश आदेश नहीं है—अनशत् ।
४३. पत धातु से क्त और क्तवत् प्रत्यय में इट् करने से पतितः रूप बना है ।	सन् प्रत्यय में पत को विकल्प से इट् अतः क्त क्तवतु में इट् नहीं होगा ।
४४. वम, जप, त्वर, रुष, संघुष्, आश्वन और श्वस धातु से परे क्त क्तवतु को विकल्प से इट् होता है ।	वम, जप और श्वस से यह नियम नहीं है ।
४५. स्म शब्द सहित माङ् उपपद में हो तो धातु से दिवादि और धादि के प्रत्यय होते हैं ।	ऐसा विधान नहीं है ।
४६. श्लिष्, शीङ्, स्था, आस, वस्, जन, रुह, भज और जृ धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय विकल्प से होता है ।	भज धातु से यह विधान नहीं है ।
४७. यज् और भज् धातु से य प्रत्यय विकल्प से होता है पक्ष में ध्यण्, यज्यम्, याज्यम् ।	ऐसा नियम नहीं है ।
४८. कृप, चृत और ऋच धातु को छोड़कर ऋकार उपधा-वाली धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है ।	ऋच धातु को नहीं छोड़ा गया है ।
४९. कृ, वृष, मृज, शंस, दुह, गुह् और जप धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है ।	दुह, गुह और जप से वैकल्पिक क्यप् का विधान नहीं है ।
५०. तिष्य, पुष्य और सिद्ध्य नक्षत्र अर्थ में क्यप् प्रत्यान्त निपातन से सिद्ध होते है ।	तिष्य शब्द से यह विधान नहीं है ।
५१. नाम्युपध धातु और ज्ञा, प्री, कृ एवं गृ धातु से क प्रत्यय होता है ।	गृ धातु से नहीं होता ।
५२. धनुष, दण्ड, त्सरु, लाङ्गल, अङ्कुश, ऋष्टि, शक्ति, यष्टि, तोमर और घट शब्द से परे ग्रह धातु को अच् प्रत्यय विकल्प से होता है ।	दण्ड, त्सरु और ऋष्टि शब्दों से यह विधान नहीं है ।
५३. आदि, अन्त आदि शब्द उपपद में हो तो कृ धातु से ट प्रत्यय होता है ।	क्षपा, क्षणदा, रजनी, दोषा, दिन, दिवस ये शब्द नहीं हैं ।
५४. फले, रजस् और मल शब्द उपपद में हो तो ग्रह धातु से इ प्रत्यय होता है ।	रजस् और मन शब्द की उपपदता में नहीं होता ।
५५. देव और वात कर्म उपपद में हो तो आप्लृ धातु से इ प्रत्यय होता है—देवापि ।	ऐसा सूत्र नहीं है ।
५६. क्षेम, प्रिय, भद्र और भद्र कर्म उपपद में हो तो कृ धातु से अण् और खश् प्रत्यय होते हैं ।	भद्र शब्द की उपपदता में नहीं होते ।
५७. बहु, विधु, अरुष् और तिल उपपद में हो तो तुद धातु से खश् प्रत्यय होता है ।	बहु शब्द उपपद में हो तो नहीं होता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. शं, स, स्वयं, वि और प्र इनसे परे भू धातु को डु प्रत्यय होता है।	सं और स्वयं शब्दों से नहीं होता।
५९. नी, पा, दाप आदि धातुओं से साधन अर्थ में ट् प्रत्यय होता है।	पा धातु से नहीं होता।
६०. अन्तर्धत और अन्तर्धण हन् धातु से अल् प्रत्यय होने पर देश अर्थ में निपातन से सिद्ध होते हैं।	अन्तर्घण शब्द नहीं है।
६१. माति, हेति, यूति, जूति, ज्ञप्ति और कीर्ति कर्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों और भाव में निपातन से सिद्ध होते हैं।	ज्ञप्ति शब्द नहीं है।
६२. स्त्रीलिंग को छोड़कर युव संज्ञक अपत्य की कुत्सा अर्थ में और पौत्रादि अपत्य की अर्चा अर्थ में युव संज्ञा विकल्प से होती है। इससे गार्ग्यः और गार्ग्यायिण दोनों रूप में बनते हैं।	युव संज्ञक शब्दों की कुत्सा अर्थ में गोत्र संज्ञा और वृद्ध संज्ञक शब्दों की पूजा अर्थ में युवसंज्ञा होती है। गार्ग्यो जाल्मः—गार्ग्यायिणः।
६३. एदोद्देश एवेयादौ, प्रागदेशे ये दो सूत्र हैं।	एङ् प्राचां देशे यह एक ही सूत्र है।
६४. दिति, अदिति, आदित्य, यम तथा जिनके उत्तरपद में पति हो उन शब्दों से इदम् अर्थ को छोड़कर प्राग दीव्यतीत अर्थ में और अपत्यादि अर्थ में अणपवादक प्रत्यय के विषय में तथा अण् प्रत्यय के स्थान में ञ्य प्रत्यय होता है। एवं इदम् अर्थ में अण के स्थान में ही ञ्य प्रत्यय होता है।	इदम् अर्थ में अणपवादक प्रत्ययों के स्थान में भी य का निषेध नहीं है।
६५. विश्रवस् शब्द से अपत्य अर्थ में अण प्रत्यय और उसके योग में अन्त को णकार आदेश होता है और णकार के योग में विश् का लोप विकल्प से होता है—वैश्रवणः, रावणः।	इस सम्बन्ध में कोई विधान नहीं है।
६६. अग्निशर्मन् शब्द से वृषगण गौत्र और पौत्रादि अपत्य अर्थ में तथा कृष्ण और रण शब्द से ब्राह्मण और वाशिष्ठ गौत्र में आयनण प्रत्यय होता है।	ऐसा विधान नहीं है।
६७. दगु, कौशल आदि शब्दों से आयनिञ् प्रत्यय और उसे युट् का आगम होता है—दागव्यायानि, कौशल्यायनि।	दगु शब्द से नहीं होता।
६८. गोधा शब्द से दुष्ट अपत्य अर्थ में एरण् और आरण् प्रत्यय होते हैं।	दुष्ट अर्थ नहीं है।
६९. अन धेनु शब्द से समूह अर्थ में इकण् प्रत्यय होता है।	न को नहीं छोड़ा है।
७०. पुरुष शब्द से कृत, हित, वध, विकार और समूह अर्थ में एय प्रत्यय होता है।	यह विधान नहीं है।
७१. प्राणी विशिष्ट शेष अर्थ में रङ्कु शब्द से षायनण् प्रत्यय विकल्प से होता है—राङ्कवायणः, राङ्कवः।	अमनुष्य वाची रङ्कु शब्द से यह विधान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२.	सप्तम्यर्थ में कुशल अर्थ से यथा विहित प्रत्यय होते हैं—प्रत्यय करने वाला सूत्र है—"कुशले" ।	त कुशलपथः यह सूत्र है ।
७३.	त्यद् आदि पंचम्यन्त शब्दों से प्रभवति अर्थ में मयट् होता है । द्वितीयान्त ज्योतिष् शब्द से अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इस अर्थ में अण् प्रत्यय और वृद्धि का अभाव निपातन से होता है ।	इनके सम्बन्ध में कोई विधान नहीं है ।
७४.	वहन अर्थ में वामादि पूर्वक धुर् शब्द से ईन प्रत्यय होता है—वामधुरीण सर्वधुरीणः आदि ।	सर्वधुर शब्द से इव प्रत्यय होता है ।
७५.	द्वितीयान्त से विध्यति अर्थ में प्रत्यय होता है । पादौ विध्यन्ति पद्या, शर्करा ।	विध्यति अर्थ में य प्रत्यय होता है, पर वह वेधन धनुष से नहीं होना चाहिए ।
७६.	सर्वजन शब्द से ण्य और ईन तथा प्रतिजन आदि शब्दों से ईनञ् प्रत्यय होता है ।	प्रतिजन आदि शब्दों से खञ् प्रत्यय होता है ।
७७.	नञ् सु और दुर् से परे शक्ति हलि और सक्थि शब्द हो तो बहुव्रीहि में समा सान्त अ प्रत्यय विकल्प से होता है ।	शक्ति शब्द से नहीं होता ।
७८.	सर्व, अंशवाची शब्द, संख्यात, वर्षा, पुण्य, दीर्घ, संख्या और अव्यय से परे रात्रि शब्द को समासान्त अ प्रत्यय होता है ।	वर्षा और दीर्घ शब्द से नहीं होता ।
७९.	सुप्रातः सुश्वः सुदिवः, शारिकुक्षः चतुरश्रः, एणीपदः, अजपदः प्रोष्ठपदः और भद्रपदः ये शब्द उ प्रत्ययान्त निपातन से सिद्ध होते हैं ।	भद्रपदः शब्द नहीं है ।
८०.	मन्द, अल्प और नञादि शब्दों से परे युधा शब्द को समासान्त अस् प्रत्यय होता है ।	यह नियम नहीं है ।
८१.	तमादि प्रत्ययों से पहले तक भृश, आभीक्ष्ण्य, सातत्य और वीप्सा अर्थ में वर्तमान पद पर वाक्य द्वित्व होता है ।	तमादि प्रत्ययों से पहले का विधान नहीं है ।
८२.	अनेक पदार्थों में भेदपूर्वक इयत्ता का ज्ञान हो उसे नानावधारण कहते हैं । नानावधारण अर्थ में वर्तमान शब्द द्वित्व होता है—"अस्मान् कार्षापणात् माषं माषं देहि" यहाँ माषं-माषं द्वित्व हुआ है ।	इन नियमों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं ।
८३.	दूसरों की अपेक्षा प्रकर्ष द्योतित हो तो पूर्व और प्रथम शब्द द्वित्व होते हैं—पूर्वं पूर्वं पुष्यन्ति, प्रथमं-प्रथमं पच्यन्ते ।	
८४.	समान व्यक्तियों के बारे में प्रश्न हो तथा उसका सम्बन्ध भाववाची स्त्रीलिंग शब्दों से हो उतर, उत्तम प्रत्ययान्त शब्द रूप द्वित्व होते हैं—उभौ इमो आढ्यौ कतरा-कतरा अनयोः आढ्यता ?	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८५. जिस नक्षत्र में बृहस्पति का उदय हो तद्वाची तृतीयान्त शब्दों से युक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। वह युक्त अर्थ संवत्सर होना चाहिए—पुष्येण उदित—गुरुणा युक्तं वर्षम् पौषं वर्षम्।

पाणिनीय और भिक्षुशब्दानुशासन के भेदस्थलों की सूचना का आधार एक हस्तलिखित पत्र है। उस पत्र की निष्पत्ति में आचार्य श्री तुलसी के मूल्यवान् क्षणों का योग है। वह पत्र प्राप्त नहीं होता तो इतने थोड़े समय में व्याकरण के दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन कर उनकी भिन्नता के बारे में लिखना बहुत कठिन हो जाता।

पाणिनीय की भाँति अन्य व्याकरण ग्रन्थों और भिक्षुशब्दानुशासन के बीच की भेदरेखाएँ भी स्पष्ट की जा सकती हैं, किन्तु यह काम बहुत श्रम-साध्य है। इसके लिए सब व्याकरण ग्रन्थों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक है। जिन विद्यार्थियों की व्याकरण में विशेष अभिरुचि है, वे इस काम में सफल हो सकते हैं। लेकिन उन्हें भी किसी अच्छे वैयाकरण के पथ प्रदर्शन की अपेक्षा रहेगी। उचित पथ-दर्शन में जागरूकता के साथ इस क्षेत्र में गति की जाए तो व्याकरण साहित्य में एक नई विधा का पल्लवन हो सकता है।

□

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

—वेदान्त दर्शन

आत्मा स्वयं ही कर्म करता है और स्वयं ही उनका फल भोगता है। अपने कर्मों के कारण स्वयं ही संसार में भ्रमण करता है और स्वयं ही कर्मों से छूट कर मुक्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org